भारतीय राष्ट्रीय आर्थिक नीति : दादा भाई नैरोजी एवं धन निकासी का सिद्धान्त

विनय कुमार राव*

भारतीय नेताओं का मानना था कि देश से काफी बड़ी मात्रा में इंग्लैंड को सम्पत्ति की निकासी के कारण भारत में गरीबी बढ़ने लगी थी। अंग्रेजो ने जो राष्ट्रीय आर्थिक नीति बनाई थी उसमें समस्त देश के वार्षिक उत्पादन का काफी बड़ा भाग इंग्लैंड ले जाया जाता था लेकिन इसकी भारत में कोई वापसी नही थी। कुछ समय के बाद देश की जनता को इससे होने वाले भारी नुकसान का एहसास होने लगा था। राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस के प्लेटफार्म की स्थापना से प्रत्येक वर्ष राष्ट्रीय नेता अंग्रेजों की आर्थिक नीति की व्यापक तौर पर आलोचना करने लगे थे।[1] हालांकि ब्रिटिश नौकरशाही और विद्वानों ने इसका खंडन किया और कहा कि यह सब कोरी कल्पना थी इसका कोई आधार नही था। दादा भाई नैरोजी ने ही सबसे पहले ब्रिटिश सरकार की नीतियों की आर्थिक तौर पर आलोचना की क्योंकि इससे इंग्लैंड धनी और भारत गरीब होता गया। आर्थिक नीति के सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप से उन्होंने समझा, इसकी गहराई में गए और फिर सिलसिलेवार इसके प्रत्येक बिन्दुओं पर प्रकाश डालते गये। अपने इंग्लैंड के प्रवास के दौरान उन्होंने इसके बारे में कहना प्रारम्भ कर दिया था।[2]

नैरोजी द्वारा एकत्रित किये गये आंकड़ो के आधार पर उन्होंने कहा था कि भारत में अपने शासन के अन्तर्गत अंग्रेजों ने जो व्यवस्था स्थापित की थी उसका प्रतिदान तो मिलना ही चाहिए था। लेकिन भुगतान के साधन उतने नही थे। उन्होंने आगे कहा कि यह इंग्लैंड की जिम्मेदारी थी कि उसे भारत को ऐसी सरकार देनी चाहिए जिसमें 'ब्रिटिश शक्ति और हैसियत के सभी लाभ भारत को मिल सके' ताकि भारतीय ब्रिटिश शासन का मूल्य बिना भूखे मरे और बिना अकाल का शिकार हुये चुका सकें। वे चाहते थे कि विदेशी पूंजी उत्पादन में वृद्धि के लिये अवश्य लगनी चाहिए ताकि दरिद्रता जैसी बीमारी भारत में न पनप सके। ऐसा होने से सभी वित्तीय समस्याएं और असंतोष अपने आप ही दूर हो जायेंगे। उन्होंने ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और गणमान्य लोगों को बताया कि प्रतिवर्ष करोड़ों पौंड की भारत से निकासी के भार को हल्का करने की अत्यन्त आवश्यकता थी।[3]

इसके परिणामों के बारे में बताते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा, ''जहाँ इस समय तक मैं जो जांच पड़ताल कर सका हूँ उससे इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी जब भी किसी क्षेत्र पर अपना अधिकार करती थी तो गरीबी उसके पद्चिन्हों पर चलते हुए उस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लेती थी। जबसे सिचाई के लिए, रेल पटरियों के लिए एवं सार्वजनिक कार्यों के लिए ऋण अमरीका के साथ युद्धों के लाभों की दुर्लभ प्राप्ति वापिस आई है तबसे ऐसा महसूस होता है कि भारत ने अपना जो खून बहाया है उसकी कुछ ही बूंदे वापिस आई है''।[4]

नैरोजी ने पार्टी आफ इंडिया नामक एक लेख लिखा था। लेकिन बाद में इसमें संशोधन करके इसमें धन निकासी सिद्धान्त का विस्तार से वर्णन किया। इसमें उन्होंने राजनीतिक एवम् आर्थिक पहलुओं का विस्तार से आलोचनात्मक अध्ययन किया था। भारतीयों की मेहनत के द्वारा जो धन सरकार ने उनसे प्राप्त किया वह प्राकृतिक नियमों के विरूद्ध था। इसके बावजूद वे दंडित नही हो सके।[5] उन्होंने इस लेख का सार बताते हुए सरकार को चेतावनी भरे शब्दों में कहा कि '' ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीय हितों की अनदेखी करने और भारतीयों को इंग्लैंड के हित में दास वृति से मेहनत करने वाले बनाए रखने की अस्वाभाविक नीति के कारण समस्त शासन अनुचित, अस्वाभाविक आत्महत्या के गर्त में घसीटता हुआ जा रहा है।.....प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन नही किया जा सकता। जब तक प्रकृति के ये नियम अटल है

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुशीनगर

तब तक हरेक उल्लंघन के लिए दंड का न्याय के साथ उसी तरह प्रावधान निश्चित रूप से जुड़ा हुआ है जैसे दिन के बाद रात आने का क्रम निश्चित तौर से जुड़ा हुआ है।''[6]

वैलबी कमीशन के सामने नैरोजी ने दृढ़तापूर्वक दी गई अपनी दलील में कहा की जो भी आंकड़े उनके पास थे उनके आधार पर वे कह सकते हैं कि भारत के धन की निकासी के ये रूप थेः–

(1) ब्रिटिश भारत से उत्पादन का जो भाग इंग्लैंड जाता था उसकी वापसी नही होती थी चाहे वह माल था या निधि.;

(2) उसके (भारत) समस्त निर्यात का लाभ जो उसे (भारत) कभी प्राप्त नही हुआ।;

(3) देशी राज्यों से जो निर्यात का भाग जाता था और जिसे देशी राज्य वापिस में प्राप्त करते थे, अपने उक्त लाभ के साथ समस्त आयात के रूप में प्राप्त करते थे और कुल निर्यात में उन्हें शामिल नही किया जाता था।[7]

भारत ने अपने उत्पादन का जो निर्यात किया वह करीब 256,740,000 पौंड बनता था जिसको किसी भी रूप मे वापिस नही किया जाता था। इस हानि के अतिरिक्त वास्तविक उत्पादन की निकासी (उपर्युक्त 2 बिन्दु) 2,851,000,000 पौंड निर्यात पर लाभ निकासी के द्वारा होता था जिस पर 10 प्रतिशत और लिया गया जो 285,000,000 पौंड बनता था। इन सभी को ब्रिटिश द्वारा भारत को किसी भी रूप में वापिस नही दिया गया था। भारतीय विदेशियों (देशी राज्यों के पूंजीपति) ने ब्रिटिश भारत से जो लाभ कमाया उसे अपने राज्यों में ले गये। जो भी माल यहाँ से गया उसका भाड़ा और समुद्री बीमे की किस्त भी इसमें शामिल होती थी। आयात और निर्यात दोनों पर ही यह सिद्धान्त लागू होता था। ये ब्रिटिश भारत के व्यापार से कैसे सम्बन्धित थी? साधारण स्थितियों में किसी को कोई शिकायत नही होती थी। हालांकि एक विदेशी भारत में आकर स्पष्ट और समानता के आधार पर ब्रिटिश भारत के लोगों से व्यापार में धन कमा सकता था लेकिन ब्रिटिश भारत के लोगों को इस तरह की अनुमति नही थी।[8]

भारत के संसाधनों के दोहन और धन निकासी के इन दोनों पैमानों ने भूमि की लगान में बढ़ोतरी जबरदस्त की जिसके कारण कृषकों पर इसकी भयंकर मार पड़ी और इसी कारण से वे दरिद्रता का शिकार होते चले गये। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री रोमेश चन्द्र दत्त ने यह स्वीकार किया है कि हम 1900–1901 के गृह प्रभार के साथ भारतीय भू–राजस्व के समस्त संग्रह से तुलना करे तो यह कहा जा सकता है कि दोनों ही मूलतः समान थे।[9] उन्होंने आगे लिखा कि निकासी का प्रत्यक्ष सम्बन्ध सरकारी राजस्व से है और इसमें बहुत बड़ा अंश भू–राजस्व का था। वैसे निकासी का वास्तविक रूप अतिरिक्त निर्यात से माना जाता है। कृषकों को भू–राजस्व चुकाने के लिए अपने उत्पादन के कुछ भाग को बाजार में बेचना पड़ता था जो स्वतः निर्यात का हिस्सा बन जाता था। यह ऐसा क्यों था ? कृषकों की अपनी मजबूरी थी क्योंकि ऊँचे लगान अदा करने के लिए उन्हें ऐसा करने के लिए विवश किया जाता था। किसानों को इस तरह की निकासी के लिए बाध्य होना पड़ता था।[10]

इस तरह की लगान व्यवस्था का परिणाम यह निकला कि कृषक भारी–भू–राजस्व की अदायगी के कारण वह दरिद्र होता गया। दूसरी तरफ कृषक के पास खाने लायक इतना अनाज भी नही था कि वह आगे वाली फसल तक अपने परिवार का पोषण कर सके। भारतीय किसान इस प्रकार भारी–भू–राजस्व और उसके उत्पादन के निकासी के कारण उसे तो दुगुनी शोषण–व्यवस्था का शिकार होना पड़ा।[11] अगर नैरोजी और दत्त के निकासी सिद्धान्तों पर विश्लेषण करें तो स्पष्ट होता है कि दोनों में अन्तर अवश्य था। दत्त के अनुसार निकासी और भूमि लगानों के बारे में नैरोजी से सहमति दर्शातें हैं। उन्होंने नैरोजी के आन्दोलन का पक्ष लेते हुए कहा कि उन्होंने भी वही बताने का प्रयास किया था कि राजस्व के बड़े भाग की वसूली किसानों से की जाती थी जो सम्भवतः सबसे दरिद्रत्तम थे। अतः दोनों ने एक ही पक्ष के दोनों आयामों पर विचार किया था। इस व्यवस्था के आन्तरिक और बाह्म दोनों ही पक्षों में सुधार की आवश्यकता पर बल दिया गया था। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि आर्थिक

निकासी तब तक कम नहीं होगी जब तक भू–राजस्व कम नही होगा। भू–राजस्व तब तक कम नही होंगे जब तक धन की निकासी कम नही होगी।[12]

इसके अतिरिक्त दूसरा मुद्दा जिसमें कटौती सम्भव थी वह इंग्लैंड में होने वाले गृह खर्चो से सम्बन्धित थी। भारतीय राजनीतिज्ञ इस विषय को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्लेटफार्म के माध्यम से इसकी स्थापना से ही उठा रहे थे।[13] हालांकि कभी तो इसको निकासी से जोड़ देते थे तो कभी नही। लेकिन वास्तविक तौर से तो यह इससे जुड़ा हुआ मुद्दा था क्योंकि इसके अन्तर्गत बेसुमार धन राशि का निर्यात होता था। इसकी कटौती पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया ताकि इसके अन्तर्गत होने वाले खर्चों का भुगतान मिलकर दोनों देश कर सके। इस प्रकार अनेक सुझाव इस विषय पर दिए गए। रेल मार्ग मार्गो के निर्माण[14] के लिए ऋण इंग्लैंड की बजाए भारत से लिया जाना चाहिए था ताकि भारी व्याज की रकम को बचाया जा सके। दूसरे, भारत के सरकारी भंडारों के लिए स्वयं देश में ही सामान की खरीद्दारी करने पर बल दिया जाना चाहिए था ताकि इसके माध्यम से काफी धन बचाया जा सके।[15] तीसरे, भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए था ताकि आयात को कम किया जा सके। गृह खर्चों को कम किए जाने पर बल दिया जाता रहा लेकिन विदेशी पूंजी के आगमन पर रोक नही लगाई जा सकी।[16] चौथे, जो भी धन राशि भारत सरकार ने ब्रिटेन से ब्याज पर ली थी उस पर ब्याज दर की कटौती की जानी चाहिए थी जिससे आर्थिक दबाव कम हो सके। इस प्रकार भारतीय नेताओ द्वारा रखा गया प्रस्ताव वास्तव में महत्वपूर्ण था जिससे गृह–खर्चे कम किए जा सकते थे।''[17]

75 वर्ष की अवस्था में पहुंचने के बाद भी उनकी भौहे ब्रिटिश राज के प्रति टेढ़ी रही जबकि इस तरह जीवन के अन्तिम पड़ाव में भाषा में बड़ी नम्रता आने लगती है। उनके व्यवहार में वही कसक थी। सावधान एवम् चेतावनी भरी भाषा का प्रयोग करते हुए उन्होने कहा कि भारतीय जनता बड़े लम्बे समय से ब्रिटिश सम्राज्यवाद के ढुलमुल और शोषणकारी नीतियों से तंग आ चुकी थी। उनके धैर्य की परीक्षा और ज्यादा ना लें अन्यथा उन्हें अपने पथ से विचलित होने में देर नही लगेगी।[18] समय सदा एक सा नही रहता, परिवर्तन प्रकृति का नियम होता है। अंग्रेजी राज को यह तत्काल जान लेना चाहिए था कि देशवासी अपने देश की बिगड़ती हुई स्थिति को अच्छी तरह समझने लगे थे। अगर समय रहते सरकार ने कोई न्यायोचित कदम नही उठाया तो वह दिन दूर नही होगा जब भारतीय शक्ति का जवाब शक्ति से देने पर उतारू हो सकते थे। यह चेतावनी मुख्य तौर पर निकासी पर पूरी तरह से पाबंदी लगाने के लिए उन्होंने बार बार दी थी। उनकी ये चेतावनी भरी भविष्यवाणी सत्य निकली जब 1905 से ही देश के विभिन्न कोनों में क्रांतिकारी संगठनों की स्थापना का दौर प्रारम्भ हुआ था। भारतीय क्रांतिकारी वर्ग भी इस बात को अच्छी तरह समझ चुका था।[19]

उनकी प्रखर आवाज ने भारत और इग्लैड में ही नही अपितु जहां–जहां भी वे गए ऐसा जादू किया कि सभी श्रोता हतप्रभ होने लगे थे। समाजवादी विचारधारा के समर्थक होने के कारण उन्होंने विश्व के उदारवादी केन्द्रों में अपने दार्शनिक भरे अंदाज में कहना प्रारम्भ कर दिया था कि बगैर सत्ता में भागीदारी के भारतीय चुप नही बैठेंगे क्योकि शिक्षा के द्वारा उन्हें राजनीतिक शिक्षा प्राप्त हुई और साम्राज्यवादी शोषण का उन्हें व्यापक आभास हो चुका था। अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय देते हुए उन्होंने विश्व समाजवादी कांग्रेस[20] को संबोधित करते हुए कहा था कि सभी समस्याओं का उपाय एक मात्र स्वशासन था जैसा की ब्रिटेन ने आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैंड और अफ्रीकी देशों को प्रदान किया था। भारत और ब्रिटिश के संबंध जुड़े रहेंगे लेकिन उनकी स्थिति 'दास' जैसी नही रहनी चाहिए। भारत उनका अपना देश था ओर अपने ही देश पर वे शासन करना चाहते थे। कहने का तात्पर्य यह था कि ब्रिटिश कामनवैल्थशीप के अंतर्गत अपने देश को विकसित करना चाहते थे और विश्व के अन्य देशो से भी प्रगतिशील संबन्ध बनाने के कड़े इच्छुक थें।[21]

1904–05 से ही भारत के राजनैतिक वातावरण में उबाल आना प्रारम्भ हो गया था। कर्जन के बंगाल विभाजन तो ऐसा कृत्य था जिसका प्रभाव समस्त भारत की राजनीति पर पड़ा। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी जैसे उदारवादी नेता भी उग्र भाषणों के द्वारा कर्जन की नीतियों की आलोचना करने लगे। दूसरे, क्रांतिकारी गतिविधियों का तेजी से विकास होने लगा था। कांग्रेस की गतिविधियों में तेजी लाने के लिए कुछ कार्यक्रमों का सहारा लिया गया ताकि राष्ट्रीय आन्दोलन में तेजी आ सके। कांग्रेस के स्वरों में तेजी आई जिसके कारण विदेशी सामान का बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर अत्यधिक बल दिया जाने लगा। 'स्वराज' के स्वरों की आवाज गूजने लगी थी जो उदारवादी भारतीय राजनीतिज्ञों को कम पसंद थी। 1905 के बनारस अधिवेशन में तो स्थिति और भी भयावह हो गई थी। राष्ट्रवादी संगठन में दरार पड़ने लगी थी जिसको बन्द करने के लिए 81 वर्षीय नैरोजी को लंदन से बुलाने पर बाध्य होना पड़ा ताकि किसी तरह यह संगठन एकीकृत रह सके। भारतीय राजनीति में जबरजस्त परिवर्तन आने के कारण सामान्य जनता को भी विश्वास में लेकर नई गतिविधियों को प्रारम्भ करने की आवश्यकता थी।[22] उन्होंने सभी की नब्ज को टटोलते हुए अपने भाषण में सामान्य मुद्दों को रखकर सब को हतप्रभ करते हुए कहा कि जब तक भारत को 'स्वराज' नही प्राप्त होगा तब तक भारतीय धन की निकासी बराबर चलती रहेगी। इससे दरिद्रता जैसी दुर्भाग्यपूर्ण और विनाशकारी बीमारी से किसी भी रूप से बचा नही जा सकता था। भारतीय प्रशासन तंत्र में चाहे कितने भी परिवर्तन आते रहे मगर उनसे कोई लाभ होने वाला नही था। सरकार और जनता दोनों का ही दायित्व था कि वे धन की हो रही निकासी को सदा के लिए बन्द करें। सभी तरह की समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए केवल 'स्वराज' ही एक मात्र विकल्प बचा था जिसको ब्रिटेन ने अपने अन्य उपनिवेशों को प्रदान किया था।[23]

कांग्रेस भारत में आए राजनीतिक तूफान से अपने आपको बचाकर राष्ट्रवादी शक्ति को एकजुट रखना चाहती थी। किसी भी ऐसे प्रस्ताव को कांग्रेस पटल पर रखने को तैयार नही थी जिससे सरकार पर किसी तरह का प्रभाव पड़े। अपने आन्दोलन के रक्षात्मक पक्ष को ही सामने रखकर अपनी आर्थिक नीतियों पर वार्ता जारी रखी। सरकार को वे किसी भी रूप में रूष्ट करने में विश्वास नही रखते थे। इन सब स्थितियों के बावजूद कांग्रेस ने भारतीय धन की निकासी, भारी भरकम कर, अत्यधिक भूमि राजस्व, स्वदेशी उत्पादन गिरावट, अत्यंत खर्चीली ब्रिटिश शासन व्यवस्था, उद्योगों की स्थापना, सैन्य खर्चो में कटौती, गृह प्रभार आदि विषयों पर टीका – टिप्पणियां जारी रखी।[24]

इन सभी को दरिद्रता का कारण माना। अगर व्यवस्था इसी तरह चलती रही तो भारत के धन रूपी रक्त को बहाने से कोई भी नहीं रोक सकेगा और देश कभी भी समृद्धिशाली नहीं बन सकेगा। रोमेश चन्द्र दत्त और नैरोजी में धन निकासी सिद्धांत पर काफी मतभेद थे। दत्त महोदय भूमि राजस्व व्यवस्था में व्याप्त दोषों को ही भारत की दरिद्रता का मुख्य कारण मानते थे जबकि नैरोजी अथाह रूप में भारतीय धन की निकासी को ही दरिद्रता के लिए जिम्मेदार मानते थे जिसके कारण राष्ट्रीय पूंजी का एक काफी बड़ा भाग इंग्लैण्ड में प्रति वर्ष जाता रहा।[25]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित आर्थिक – राजनीतिक नीतियों, संस्थाओं आदि ही इस आधार का मूल कारण था। सरकार ने जो नागरिक सेवा और सैन्य सेवा का भारत में प्रतिरोपण किया था कि वह विश्व में सबसे महंगी सेवाएं थी। जिनके कारण भारतीय राष्ट्रीय सम्पदा के बड़े भाग को यूं चटकर जाती थी। जिन ने तत्कालीन भारतीय सरकार को जो सेवाएं अर्पित की थी उनके बदले में वे सेवानिवृत्ति के बाद भी पेंशन एवम् भत्ते अन्तिम सांसों तक भारतीय खजाने से प्राप्त करते रहे। भारत मंत्री, उसके अधीन उप–मंत्रियों, कौंसिल के सदस्यों एवम् अन्य अधीनस्थ अधिकारियों,[26] कार्यालय, भवन का किराया एवम् अन्य प्रकार के खर्चो का अत्यधिक भार भारतीय कोष पर पड़ता था जो प्रतिवर्ष कई करोड़ रूपये बनता था। भारत से चाय, काफी, नील, जूट, कपास, कोयला, लोहा एवम् अन्य खाद्य पदार्थो के रूप में भी भारी मात्रा में भारतीय सम्पदा निर्यात के द्वारा

यूरोप में चली जाती थी।[27] रेलों पर भी काफी पैसा खर्च किया गया जिसका भुगतान ऊंचे ब्याज दर पर से किया जाता था। रेलों ने आर्थिक एवम् प्रशासनिक आवश्यकताओं को पूरा करने में साम्राज्यवादी शक्ति को भरपूर सहयोग दिया। भू–राजस्व एवम् कराधान से हुए विशाल धन–भंडार ने लोगों के मन में यह भावना भी दी थी कि ये ही भारत की गरीबी के असली कारण थे।[28]

इनमें कोई संदेह नहीं कि भारतीय राजनीतिज्ञ विशेषकर नैरोजी, दत्त, रानाडे, वाचा, बनर्जी, गोखले, मुधोलकर आदि ने राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक पक्ष के द्वारा भारतीय धन के निकासी सिद्धांत को राजनीतिक रूप दिया। इससे भारतीयों को आर्थिक नीतियों का ही नहीं बल्कि उनके असली मनसूबे का मर्म ज्ञात हुआ। दूसरे, बार–बार इन विषयों पर चर्चा से उनको आर्थिक जानकारियों के साथ राजनीतिक शिक्षा का भी अनुभव हुआ जिसका लाभ उन्हें भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में हुआ। सभी आर्थिक विषयों का हल राजनीतिक स्तर पर होने वाले सुधारों से संतुष्ट नहीं रहे। इन सुधारों से किसी भी प्रकार की आर्थिक समस्याओं का समाधान नहीं निकल पाया था। उन्होनें इन आर्थिक प्रश्नों को साधारण भाषा में समझाने का हरसंभव प्रयास किया जिससे देश के सभी लोग इनको आसानी से समझ सकें। आर्थिक शोषण को आसानी से समझा भी जा सकता था क्योंकि यह उनके जीवन से जुड़ा हुआ प्रत्यक्ष प्रश्न था। अगर अन्य नेता भी इसमें बराबर सक्रिय रहते तो एक बहुत बड़ा आंदोलन का रूप यह ले सकता था। जिस प्रकार नैरोजी ने इसे एक नारे का प्रारूप दिया था उससे राजनीतिक हलचल तो अवश्य हुई मगर व्यापक आंदोलन का रूप नहीं ले सका। जैसा कि कहा जाता है कि यह देश कभी सोने की चिड़ियाँ होता था। मगर अंग्रेजों ने लूट कर इसे अत्यंत कंगाल बना दिया था। हालांकि नैरोजी द्वारा ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न उठाने के लिए अंग्रेजों ने उन्हें छिपा विद्रोही तक कहा लेकिन उन्होंने अपने अदम्य साहस एवम् धैर्य के साथ यह प्रमाणित कर दिखाया कि बिना आर्थिक परिवर्तन के आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था लोकहित नहीं हो सकती थी।

सन्दर्भ सूची :

1. 1885 से लेकर 1918 तक सभी कांग्रेस अध्यक्षों ने अपने भाषणों में ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों की जमकर आलोचना की। लेकिन विषय की गहराई में तो कुछ ही भारतीय राजनीतिज्ञ जाते थे। अध्यक्षीय भाषण के द्वारा ही नौरोजी, दत्त, बैनर्जी, वाचा, मुधोलकर आदि ने विशेषकर उन्हीं विषयों पर अपना ध्यान आकर्षित रखा। जी0ए0 नाटेशन, स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स ऑफ दादा भाई नैरोजी, मद्रास, 1918, पृ0 656।
2. पारिख, सी0एल0 वही, 29–32।
3. वही, पृ0 102–06, 133–136।
4. वही, पृ0 165।
5. दादा भाई नैरोजी, पावर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया (लन्दन, 1901) पृ0 125।
6. वही।
7. इंडिया एक्सपैडिन्चर कमीशन, खण्ड–3, 31 जनवरी, 1897।
8. वही, पृ0 150–152।
9. दत्त, इकोनामिक हिस्ट्री आफ इंडिया, खण्ड–2, पृ0 327–373।
10. वही।
11. वही।
12. वही, पृ0 348–49।
13. बेसैन्ट, वही, पृ0 13, 80, 198, 223, 247, 268, 281 आदि।
14. दत्त, वही, खण्ड–द्वितीय, पृ0 374–75।

15. नाटेशन, वही, पृ0 709–710।
16. तिलंड हैमिल्टन जेंक्स, दी माइग्रेशन आफ ब्रिटिश कैपिटल टु 1875 (न्यूयार्क, 1927) पृ020।
17. इंडिया एक्सपैन्डिचर कमीशन खंड III, पृ0 18954–55।
18. नाटेशन, वही, पृ0 222–24, 391–92।
19. इसके लिए विस्तारपूर्वक अध्ययन करने हेतु 1917 में प्रकाशित गुप्तचर विभाग के तत्कालीन निर्देश जेम्स कैम्पबल कर द्वारा सम्पादित सरकारी रिपोर्टो के आधार पर पुस्तक, पोलिटिकल ट्रबल इन इंडिया, से उपयुक्त जानकारी व्यापक तौर से प्राप्त होती है।
20. अगस्त 1904 में नीदरलैण्ड के शहर हेग में विश्व समाजवादी कांग्रेस के सम्मेलन की विस्तृत जानकारी लन्दन से प्रकाशित होने ब्रिटिश कांग्रेस कमेटी के पत्र ने इंडिया ने प्रकाशित की थी जिसमें दादा भाई नैरोजी के भाषण को उद्धृत किया गया। इंडिया, 2 सितम्बर 1904।
21. वही।
22. आर0पी0 मसानी, दादा भाई नैरोजी, दिल्ली 1960 पृ0 497।
23. रिपोर्ट आफ द प्रोसिडिंग्स आफ द टवैन्थ–सकैण्ड इंडियन नैशनल कांग्रेस, कलकत्ता, 1906, पृ0 21।
24. बेसैन्ट, वही, पृ0 415–441।
25. मसानी , वही, पृ0 414–15, 522–23।
26. बिपिन चन्द्र, वही, पृ0 615।
27. वही, पृ0 616।
28. वही।